International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 239-240

हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता का विकास

डॉ0 जयराम त्रिपाठी

सहा0 प्रोफेसर (हिन्दी), हेमवती नंदन बहु0 राज0 स्नातको0 महा0 नैनी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। परिवर्तन की अटूट श्रृंखला में सामाजिक परिवर्तन वर्तमान जीवन शैली का अद्वितीय पक्ष हैं मानवीय जीवन मे परिवर्तन होना, उसकी निरन्तरता का परिचायक/सूचक है। वर्तमान में भारतीय ग्रामीण सामाजिक चेतना में तीव्र गति से परिवर्तन दृष्टिगत होता है। यह परिवर्तन समयानुकूल/समय सापेक्ष है। वस्तुतः वैश्वीकरण के युग में बाजारवाद और संचार माध्यमों में एक ओर जहाँ नगरों में द्रुतलय से परिवर्तन हो रहा है। वहीं भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन के स्वर विद्यमान हैं।

मूल शब्द: आँचलिकता, हिन्दी उपन्यास, जनमानस एवं कथाकार

प्रस्तावना
भारत कृषि प्रधान देश है यहाँ की लगभग 67 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है अतः भारतीय ग्रामीण सन्दर्भ में यदि स्वतंत्रता पूर्व के समय की बात करें तो ग्रामीण संरचना में जमीदारी प्रथा, शोषण, अत्याचार, अमानवीय व्यवहार, नारी उत्पीड़न, अशिक्षा, संचार माध्यमों का अभाव, यातायात साधनों, की अनुपलब्धता आदि असन्तुलित परिस्थितियों की व्यापकता थी। जिसका यथार्थ चित्रण हिन्दी साहित्य, विशेष रूप से प्रेमचन्द और आंचलिक उपन्यासों में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी रही है, फिर भी उसमें निरन्तर परिमार्जन और परिवर्द्धन होता रहा है। यदि विचार करें तो एक ओर जहाँ जमींदारी प्रथा हतोत्सहित हुई, वही खेतों में कृत्रिम खादों और इलेक्ट्रानिक मशीनों से उपज में पर्याप्त वृद्धि देखने को मिली, संचार माध्यमों की वृद्धि हुई, यातायात के साधन बढ़े, लोग आत्म निर्भर होने लगे और शहरों में पलायन भी परिवर्तन का ही चेहरा/रुप है।

यहाँ एक बिन्दु ध्यान रखने योग्य है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, लेकिन भारतीय ग्रामीण समाज का वास्तविक चित्रण, हिन्दी उपन्यास की एक अमूल धरोहर है। ग्रामीण समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक परिस्थितियों में जहाँ कहीं भी जो खामियाँ थी, उनको प्रकाश में लाना। जैसे–जमींदारी प्रथा की कुरीतियाँ, नारी उत्पीड़न, पूँजीपतियों द्वारा छोटे किसानों पर शोषण, सूदखोरी आदि समस्याओं को प्रकाश में लाकर के अपने पात्रों में अदम्य साहस और परिवर्तन भरी भावनाओं से प्रेरित कर सुन्दर भारत की परिकल्पना की। हिन्दी उपन्यास की परम्परा में ग्रामीण सामाजिक संरचना को प्रभावित करके आश्रय उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के हैं जिन्होनें अपनी रचना चातुरी से ऐसे निकष की स्थापना की है, जो आधुनिक भारत के निर्माण के अपूर्व योगदान की भाँति अजेय हो–

प्रेमचन्द ने अपने अधिकांश उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना के सभी पहलुओं पर गंभीरता से विश्लेषण किया, तत्पश्चात् अनुकुल और प्रतिकूल ग्रामीण संरचना को अपने पात्रों के माध्यम से परिवर्तन का स्वर प्रदान किया। 'सेवासदन' में पीड़ित नारी के जीवन की त्रासदी और उससे उत्पन्न जागृति एवं परिवर्तन जो स्त्री विमर्श के रूप में विद्यमान है, प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द ने भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त किसानों और जमींदारों के आपसी समन्वय और खटास का बड़ी चतुराई से चित्रण किया है जिसका काया पलट जमींदारी उन्मूलन से हो गया। यद्यपि जमींदारी उन्मूलन के बाद और खास तौर से आज जो पीढ़ी युवा है वह शायद ही उन सामाजिक परिस्थितियों को महसूस कर सके पर प्रेमचन्द ने अपने समय को चित्रित करते हुए पाठकों को समस्त सामाजिक विषमताओं से रूबरू कराया है। प्रेमचन्द की यही सरलता आलोचक के लिए कठिनाई उत्पन्न करती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों पर विचार करते हुए प्रो0 राम स्वरुप चतुर्वेदी ने लिखा है–''प्रेमचन्द का रचनात्मक मूल्यांकन कई कारणों से समस्या उत्पन्न करता है। ये पाठकों को जितना सहज हैं आलोचकों को उतना ही मुश्किल। उनकी कथाकृतियाँ घटना एवं अनुभव बहुल दोनों हैं। यहीं प्रेमचन्द आलोचक के लिए मुश्किल बनते हैं। यह स्थिति अपने में विडंबनापूर्ण है कि अनुभव–बहुलता के जिस विशिष्ट गुण के लिए पाठक के रुप में वह आभारी था, वही अनुभव बहुलता आलोचक के रुप में उसके सामने एक सीमा बनाती है।''[1]

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास जनमानस से दूसरे रुप में जुड़े हुए थे किस्सा गोई की परम्परा से जुड़ा साहित्य मूलतः घटना प्रधान या अद्भुत घटना प्रधान था इस संदर्भ में डा0 रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है ''प्रेमचन्द–पूर्व –युग के अर्धशिक्षित पाठकों के संस्कार अधिक उन्नत नहीं थे। उनमें सुरुचि का अभाव था। वे अब भी सो रहे थे। उपन्यासकारों का एक बड़ा समुदाय उन्हें जगाने के बजाय उनके मनोरंजन में ही लग गया''[2]

प्रेमचन्द के आसपास ही वृन्दावन लाल वर्मा ने उपन्यास लेखन प्रारम्भ किया। इतिहास से कथानक ग्रहण करने वाले वर्मा जी का पहला उपन्यास गढकुंडार 1927 में लिखा गया है पेशे से वकील वर्मा जी ने न केवल लेखन बल्कि सक्रिय राजनीति के द्वारा भी ग्रामीण जीवन में परिवर्तन का प्रयास किया। डॉ0 शशि भूषण सिंहल ने लिखा है'' उस जमाने में जमींदार तथा सरकारी अफसर किसानों से बेगार लेते थे। बेगार के अधीन उन्हें मेहनत मजदूरी करनी पड़ती थी और उसके बदले में पारिश्रमिक नहीं मिलता था या बहुत थोड़ा मिलता था''। वर्मा जी के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में बुन्देलखण्ड का आंचलिक वैभव अपनी सम्पूर्णता के साथ दिखाई पड़ता है।[3]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' पर विचार करते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है ''द्विवेदी जी का साहित्य मनुष्य की विराट

गरिमा का साहित्य है। वे मनुष्य को जड़ या पशु नही मानते, उसे विकास की अंतिम परिणति स्वीकार करते है।''[4]

'रंगभूमि' प्रेमचन्द का एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें उन्होनें 'सूरदास' नामक ग्रामीण चरित्र के माध्यम से तत्कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर परिववर्तन के संकेत दिये हैं। जो परवर्ती युग में समीचीन प्रतीत हुआ। 'गोदान' के माध्यम से प्रेमचन्द सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण सामाजिक सरंचना को जीवित करते हैं उसकी सफलता इसमें है कि भारतीय जनमानस में ग्रामीण सामाजिक रूपों में परिवर्तन की आकांक्षा प्रबल हो जाती है।

सही अर्थों में आंचलिकता की स्थापना फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' से होती है यद्यपि आंचलिकता के दर्शन हमें उनके पूर्व के लेखकों से ही होने लगते हैं इस पर विचार करते हुए डॉ0 राम विलास शर्मा ने लिखा है ''प्रेमचन्द ने बनारस जिले के गाँवों को लेकर ढेरों कहानियाँ और उपन्यास लिखे फिर भी उनकी रचनाएँ पढ़ने पर सहसा यह बोध नहीं होता कि हम हिन्दी भाषी प्रदेश के किसी अंचल विशेष के बारे में पढ़ रहे हैं। उनके पात्रों में आँचलिकता से अधिक हिन्दुतानीपन अथवा हिन्दी पन है।''[5]

प्रेमचन्द के पश्चात आँचलिक उपन्यासों के एक ऐसे दौर का सूत्रपात हुआ जिसमें ग्रामांचलों की प्रकृति, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, रिश्ते, राजनीतिक, सांस्कृतिक सम्पूर्ण जीवन की परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण होता है। आँचलिक उपन्यासों में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सम्पूर्ण जीवन सम्बन्धी सभी पक्षों का समन्वय होता है।

नागार्जुन एक ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होनें अपने निजी जीवन से सम्बद्ध ग्रामीण संस्कृति एवं चेतना के परिवर्तन को अपने उपन्यासों का कथानक बनाया पुरानी परम्पराओं, जमींदारी प्रथा, समाजवादी चेतना के साथ–साथ वहाँ ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन के दृश्यों का सुन्दर चित्रण किया है। नागार्जुन अपने जीवनव्यापी संघर्षों और उसकी विकासोन्मुखी चेतना, सामाजिक परिवर्तन को बलचनमा, नई पौध, वरुण के बेटे आदि उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है।

भारतीय सामाजिक परितर्वन का हिन्दी उपन्यासों में विशेष रुप से फणीश्वरनाथ रेणु, के उपन्यासों में सरोकार अत्यधिक हुआ है। उनके उपन्यासों में नियंत्रित राजनैतिक दल, राजनैतिक पात्र, उनके विभिन्न वर्ग, गाँव बाजार, पेड़–पौधे, जीव आदि–सभी स्थितियाँ सजीव रुप में परिलक्षित हुई हैं। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में गाँव की राजनीतिक, ग्रामीण संस्कृति, व्यवहार और कला के माध्यम से उनमें व्याप्त अमानवीयता को सक्रिय पात्रों के माध्यम से पारिवारिक ग्रामीण पृष्ठभूमि में विद्रोह और परितर्वन के मापदण्ड स्थापित किये हैं। ग्रामीण सामाजिक चेतना से प्रभावित उपन्यासकारों की एक लम्बी परम्परा है, जिसमें ग्रामीण सामाजिक संरचना के परितर्वन को भी दर्शाया गया है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास जरायम पेशा करनट जाति के जीवन यथार्थ से सम्बन्धित है। 'देवेन्द्र सत्यार्थी आंचलिक उपन्यासकार हैं, इनके ब्रह्मपुत्र के माजुली द्वीप और दिसांगमुख के निवासियों की संघर्ष कथा है।

राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' आंचलिक उपन्यासकार है सन् 1960 'जंगल के फूल' में मध्य प्रदेश के गोंड़ जनजाति के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का अंकन है। 'रामदरश मिश्र' का उपन्यास 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' जिनमें क्रमशः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण तथा गोरखपुर जिले के पाण्डेपुरवा गाँव के किसानों के जीवन को यथार्थ चित्रण हैं। जिसमें, ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक महत्व में जल एवं नदियों का कितना प्रगाढ़ सम्बन्ध है, यह दर्शाया गया है। इसी प्रकार राही मासूम रजा का–आधा गाँव, श्री लाल शुक्ल का राग दरबारी, हिमांशु जोशी का अरण्य 'भैरव प्रसाद गुप्त' का सती मैया का चौरा, अलग–अलग वैतरणी आदि उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा की गई है।

उपर्युक्त सिंहावलोकन के पश्चात यह प्रमाणित हो जाता है कि साहित्य में सर्वाधिक सशक्त विधा के रुप में उपन्यास प्रतिष्ठित है। उपन्यास में जीवन के यथार्थ विधि क्रियाकलापों और सामाजिक परिवर्तन का सरोकार निरन्तर चलता रहता है। साहित्य हमारे समाज का आदर्श (दर्पण) है और वह इसका नियामक और उन्नायक भी है अतः साहित्य एवं समाज दोनों एक दूसरे के पूरक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 रामस्वरुप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य एवं संवेदना का विकास (लोक भारती प्रकाशन, संस्करण : 1986) पृष्ठ–140
2. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी उपन्यास (विश्वविद्यालय प्रकाशन–2010) पृष्ठ–16
3. शशिभूषण सिंहल : कथाकार वृन्दावन लाल वर्मा (हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़–1993) पृष्ठ–03
4. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : गद्य के प्रतिमान (लोक भारती प्रकाशन–1996) पृष्ठ–65
5. डॉ0 राम विलास शर्मा : प्रेमचन्द की परम्परा एवं आंचलिकता (वर्तमान साहित्य शताब्दी कथा विशेषांक जन क0–2000) पृष्ठ–379